भारतीय संस्कृति और पर्यावरण संरक्षण

- डॉ. रविन्द्र सिंह राठौड़, सहायक आचार्य
- डॉ. बलवीर सिंह, सहायक आचार्य

मुख्य शब्द- धर्म, संस्कृति, रीति-रिवाज, मूर्त, पंचतत्व, वृक्ष, प्रदूषित, दोष, गौधूली, सरपट, बहुमुखी, रक्षक, शुद्ध, साहित्य, प्रोत्साहन।

भूमिका - जहाँ तक भारतीय परम्परा का प्रश्न है, भारतीय परम्पराएँ विभिन्न धर्मों से प्रभावित हैं। भारत में जितने भी धर्म हैं, उन सबके सांस्कृतिक रीति-रिवाजों, कर्मकाण्डीय प्रतिमानों और विश्वासों की धार्मिक व्यवस्थाएँ एक दूसरे से भिन्न हैं। भारतीय समाज में धर्म इतना प्रभावशाली है कि इसने सामाजिक जीवन के प्रत्येक पहलू को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया है। विभिन्न भारतीय धर्मों (हिंन्दू, जैन, बौद्ध एवं सिख) ने अपनी-अपनी परम्पराओं और सामाजिक संस्थाओं को स्वतंत्र रूप से विकसित किया किन्तु भारतीय धर्मों के अनुयायियों में धार्मिक परम्पराओं में प्रकृति और पर्यावरण का एक सुन्दर समन्वय संस्कृति के विकास में दृष्टिगत होता है।

भारतीय संस्कृति में पर्यावरण को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। यहाँ मानव-जीवन को सदैव मूर्त एवं अमूर्त रूप से पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नदी, वृक्ष एवं पशु-पक्षी आदि के साहचर्य में देखा गया है। भगवान कृष्ण ने स्वयं को ऋतु स्वरूप, वृक्ष स्वरूप, नदी स्वरूप तथा पर्वत स्वरूप कहकर इनके महत्व को रेखांकित किया है।[1] पर्यावरण के ये तत्व हमारे जीवन के आधार हैं।

भारतीय संस्कृति मानती है कि इस देह की रचना पंचतत्वों से ही हुई है, इसलिए इनका संरक्षण महत्वपूर्ण है। पर्यावरण तथा प्राणी एक दूसरे पर आश्रित हैं। इनके बीच का सम्बन्ध गहरा है। एक प्रभावित होता है तो इसका प्रभाव दूसरे पर भी पड़ता है, यही कारण है कि भारतीय चिंतन में पर्यावरण संरक्षण की अवधारणा उतनी ही प्राचीन है, जितना मानव जाति का ज्ञात इतिहास। भूमण्डलीय पर्यावरण संरक्षण हेतु प्राकृतिक शक्तियों के संतुलन विषयक ऋषियों द्वारा की गई मंगलकामना दृष्टव्य है। पर्यावरण के तीन कारक हैं मृदा, वायु, तथा तापमान। वेदों में पृथ्वीलोक, अंतरिक्षलोक तथा भूलोक हैं, जो सर्वव्यापक शक्ति अर्थात् विष्णु भगवान द्वारा रचित तथा संरक्षित हैं। ऋषि पर्यावरण के प्रदूषण से भयाक्रांत थे अतः मानव को बार-बार उसके संरक्षण के लिए सतर्क तथा सचेष्ट करते रहे। ऋग्वेद के अनुसार प्रकृति का अतिक्रमण तो देवों के लिए भी निषिद्ध था -

अतिक्रम्म न गच्छन्ति मरुतः।
मरुतो नाह रिष्यथ।।[2]

पर्यावरण के प्रमुख घटक वृक्ष और वनस्पतियों के संरक्षण के संदर्भ में प्राचीन दृष्टिकोण आज भी अत्यंत उपयोगी एव व्यावहारिक है। कुछ वृक्षों में एक रसस्राव मेलाटोनिन पाया जाता है। यह हारमोन केले, पीपल तथा बरगद जैसे पेड़ों में सर्वाधिक पाया जाता है। शायद इसीलिए धार्मिक कृत्यों में इनका महत्व प्रतिपादित किया जाता है। गीता में श्रीकृष्ण ने पेड़ों में स्वयं को पीपल बतलाया है। मत्स्यपुराण में पुत्रों से भी अधिक वृक्षों का महत्व प्रतिपादित करते हुए कहा गया है-

दशकूपसमो वापी, दशवापी समो ह्रदः।
दशह्रदसमः पुत्रो दशपुत्रसमो डुमः।।

न केवल वृक्ष-वनस्पतियाँ अपितु व्रत, अनुष्ठान, त्यौहार एवं पूजा-पद्धति इत्यादि सभी क्रियाओं में पर्यावरण संरक्षण की व्यापक भावना छिपी हुई है। श्रीकृष्ण का गोवर्धन पूजा का संदेश पर्यावरण के प्रति सजगता का निर्देशक है। इसी प्रकार मेघ की महत्ता को समझकर संस्कृत कवि कालिदास ने मेघदूत काव्य में यक्ष का मेघ से मित्र संबंध स्थापित किया है। यदि मेघ के स्वरूप धूम, ज्योति, जल और हवा को प्रदूषित होने से नहीं बचाया गया तो उसकी तेजस्वी वर्षा जल को तेजाब में परिवर्तित कर देगी जो मानव ही नहीं अपितु समूची प्रकृति के विनाश का कारण सिद्ध होगी।[3]

धर्मशास्त्रों में बड़, पीपल, आंवला आदि वृक्षों को 'देव' संज्ञा दी गई है। उनके प्रति किसी समय कितनी गहरी श्रद्धा रही होगी इसका परिचय इस बात से मिलता है कि अभी भी वृक्षों के साथ कन्या का विवाह होने की प्रथा जहाँ-तहाँ प्राप्त होती है। मंगली दोषग्रस्त कन्या का विवाह पीपल वृक्ष के साथ कर दिया जाता है ताकि नक्षत्र दोष का अनिष्ट पीपल पर पड़े और मनुष्य वर को किसी अनिष्ट का सामना न करना पड़े। प्रातः पक्षियों की चहचहाहट से मन खिल जाता था, शाम की गोधूलि वेला में उड़ती धूल प्रदूषण नहीं अपितु मिट्टी की भीनी खुशबू फैलाती थी। पर आज ये सब कवियों की कल्पनाओं में सिमट कर रह गया है। सरपट, विकास की दौड़ में हमने बहुत कुछ पाया है परन्तु पर्यावरण एवं भावनाओं के रूप में जो खोया है, वह अपूरणीय क्षति है।[4] बंकिमचन्द्र चटर्जी ने 'सुजलां सुफलां मलयज शीतलां शस्यश्यामलां' पंक्ति में जिस पृथ्वी का चित्र अंकित किया है, उसमें भारतीय पर्यावरण संरक्षण का समग्र जीवन दर्शन निहित है।

मानव और जीवधारियों की रक्षा के लिए पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता है। बहुमुखी विकास की गति धीमी न पड़े, इसके लिए पर्यावरण संरक्षण जरूरी है। मानव रोगों से ग्रसित न हों, सभी जीवधारी सुरक्षित रहें। भारतीय संस्कृति में मिट्टी, वायु और जल, जो जीवनदायिनी शक्तियाँ हैं उनमें विकार उत्पन्न न हो, इसलिए पर्यावरण संरक्षण जरूरी है। इसलिए मनुष्य अपने आपको प्रकृति का स्वामी न समझे, उसका रक्षक समझे, इस भाव से वह प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करें यह भारतीय दर्शन साहित्य में कहा गया है। भारतीय दर्शन में प्रकृति के सभी तत्वों को ईश्वर का प्रतिरूप माना गया है तथा पर्यावरण के समस्त कारकों के प्रति मित्रवत व्यवहार करने की अनुशंसा की गयी है। भारत में प्राचीनकाल से ही पर्यावरण संरक्षण को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। ऋग्वेद, उपनिषद, पुराण, रामचरितमानस आदि में पंच तत्वों से सृष्टि की उत्पत्ति स्वीकारी गयी है। वैदिक ऋषियों ने पृथ्वी एवं प्रकृति को माता का स्थान दिया- माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या।[5]

भारतीय दार्शनिक अवधारणा में ब्रह्मण्ड-विश्व के कण-कण में ईश्वर का निवास है अथवा वह ईश्वर से आच्छादित है। इसका त्यागपूर्वक भोग करने का आदेश है। वेदों में पर्यावरण संरक्षण के अंतर्गत वायु, जल, ध्वनि, वृक्ष, पशु-पक्षी आदि के संरक्षण पर विशेष बल दिया गया है। यजुर्वेद के अनुसार शुद्ध हवा भेषज गुणों से युक्त है, जो समस्त प्रकार की व्याधियों से छुटकारा दिलाती है।[6]

आर्ष परम्परा में जल को भी देवता माना गया है। फलतः नदियों, पोखरों, तालाबों सदृश्य जल आस्थाओं पर मल-मूत्र तथा दूषित पदार्थों का विसर्जन वर्जित किया गया।[7] शुद्ध जल मनुष्य को दीर्घायुष्य प्रदाता, प्राणों का रक्षक, तथा कल्याणकारी है। साथ ही जल मुखमण्डल का सौन्दर्य, कोमलता, कान्तिवर्धक औषधि है। पाचन में अधिक जल सर्वथा अपेक्षित है अर्थात् शुद्ध जल मानव-जीवन का प्राण है।[8] भारतीय परम्परा में वृक्ष को भी देवता माना गया है। नीम, तुलसी आदि के वृक्ष प्रत्याक्षाप्रत्यक्ष पर्यावरण को संरक्षित एवं सवंर्द्धित करने हेतु उपयोगी हैं। अतः उनके काटने पर नैतिक प्रतिबंध लगाए गए और उन्हें 'सर्व

कामफलाः वृक्षाः, कहा गया। ऑक्सीजन प्रदाता तुलसी कवच में लिखा गया और जनमानस को शिक्षित किया गया कि तुलसी वृक्ष की पूजा करने वाले के घर यमदूत नहीं आते।[9] पशु प्रजातियों को संरक्षित करने के लिए सरस्वती के वाहन हंस, कार्तिकेय के मोर, लक्ष्मी के उल्लू, दुर्गा के सिंह, शिव के नन्दी, इन्द्र के ऐरावत, गणेश के मूषक, कालरात्रि के गधे आदि की देवी-देवताओं के साथ पूजा-अर्चना की गई। गाय को माता मानकर उसकी हत्या निषेध की गई।[10] जैन और बौद्ध साहित्य में भी प्राकृतिक प्रबोध व्याप्त दिखाई देता है। वनयात्रा, वृक्ष महोत्सव एवं पशु संरक्षण की उदात्त भावना इन धर्मों के साहित्य से सम्पृक्त है। मौर्यकाल में कौटिल्य ने कृषि, पशुपालन व वाणिज्य को समवेत कर 'वार्ता' नाम दिया है, जो वास्तविक अर्थों में समुचित, सन्तुलित एवं सम्पोषित विकास के घटक रहे होंगे। वार्ता पर आधारित अर्थव्यवस्था से पर्यावरण के शुद्धिकरण की प्रक्रिया को प्रोत्साहन मिला होगा।[11]

निष्कर्षः इतिहास के ऐसे मुकाम पर हम पहुँच चुके हैं जहाँ हमारे सामने अनेकों समस्याएँ खड़ी हैं। मनुष्य की अज्ञानता अथवा तटस्थता के कारण पृथ्वी की अपूरणीय क्षति हुई है। अज्ञानता अथवा तटस्थता के माध्यम से हमें पृथ्वी, इसके प्रति पूर्ण ज्ञान और बुद्धिमतापूर्ण कार्यों के माध्यम से हम अपने स्वयं के लिए तथा अपनी भावी पीढ़ी के लिए मानव आवश्यकताओं और आशाओं के अनुरूप वातावरण में उत्तमजीवन हासिल कर सकते हैं। पर्यावरणीय गुणवत्ता की अभिवृद्धि अच्छे जीवन निर्माण हेतु विस्तृत क्षेत्र है। प्राकृतिक संसार में स्वतंत्रता प्राप्त करने के उद्देश्य हेतु मनुष्य को ज्ञान का प्रयोग प्रकृति के साथ सहयोग कर बेहतर पर्यावरण निर्माण के लिए करना चाहिए। वर्तमान और भावी पीढियों के लिए मानव पर्यावरण का बचाव और सुधार मानव जाति और मानवीय संस्कृति का अनिर्वाय उद्देश्य बन गया है। यह एक ऐसा उद्देश्य है जो शांति और विश्वव्यापी आर्थिक और सामाजिक विकास के स्थापित मूल उद्देश्यों के साथ-साथ उनसे संगत रूप में हासिल किया जा सके। वर्तमान समय में पर्यावरण संरक्षण समय की जरूरत बन गई है।

आज मानव अपनी इच्छाओं, निज स्वार्थों एवं आर्थिक सम्पन्नता के लिए अत्यधिक उत्पादन एवं आवश्यकता से अधिक प्राकृतिक संसाधनों का दोहन कर रहा है जिससे कि स्वच्छ एवं सन्तुलित पर्यावरण दूषित हो रहा है, अतएव पारिस्थितिकी में सन्तुलन को बनाए रखने के लिए मानव को प्राकृतिक संसाधनों का समुचित एवं सुनियोजित उपयोग करना होगा ताकि पारिस्थितिकी विकास के ठोस आधार को निर्मित किया जा सके। सतत् विकास के अंतर्गत पर्यावरण एवं समाज के हितों के अनुकूल विकास के कार्यक्रम को योजनाबद्ध रूप से निर्मित कर क्रियान्वित किये जाने की आवश्यकता है?

पर्यावरण प्रदूषण में सुधार लाने में भी पेड़ पौधों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में भी पर्यावरणीय संतुलन को बनाये रखने के लिए 33 प्रतिशत वन होना चाहिए। भारत में जनसंख्या वृद्धि के कारण भोजन, आवास तथा अन्य उपभोक्ता वस्तुओं को पूरा करने के लिए वनों को नष्ट किया गया जिससे वन्य प्राणियों का भी विनाश हुआ है। वनों ने करोड़ों लोगों को रोजगार के साथ-साथ भारतीय राष्ट्रीय आय में एक प्रतिशत का योगदान भी दिया है। देश के विभिन्न कुटीर एवं ग्रामीण उद्योग वनों पर आधारित हैं। लाख की खेती, मधुमक्खी पालन, बीड़ी बनाना, टोकरियाँ बनाना, रस्सी बनाना, रेशम के कीट पालन आदि उद्योग वनों पर निर्भर हैं। इन उद्योगों का विकास ग्रामीण क्षेत्रों में वृक्षारोपण करके किया जा सकता है।[12]

महात्मा गांधी ने कहा 'प्रकृति के भण्डार सबकी अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तो

पर्याप्त हैं, किन्तु चन्द लोगों की लालच को भी तृप्त करने के लिए बहुत थोड़े हैं। अतः विकासशील राष्ट्रों को सर्वप्रथम उपभोक्ता संस्कृति के आकर्षक शिकंजे से मुक्त होकर सम्पूर्ण आबादी की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति पर अपना ध्यान केन्द्रित करना होगा। वर्तमान समय के आर्थिक परिवर्तनों ने भारत तथा अन्य विकासशील देशों में पर्यावरणीय और प्राकृतिक सम्पदा की सामाजिक व्यवस्था और सुरक्षा को कमजोर बनाया है। पूर्व में हमारी संस्कृति में पारिस्थितिकी मूल्यों के दैवीकरण तथा उन्हें रहस्यात्मक स्वरूप देकर उनके संरक्षण की व्यवस्था थी। आधुनिक व्यवस्था ने उस प्राचीन दैवीय व्यवस्था को तो समाप्त कर दिया परन्तु वैकल्पिक व्यवस्था के विकास की ओर कोई ध्यान नही दिया है।

भारत में भौतिक एवं जैविक विविधता बहुत बड़ी है। भारत भौतिक पारिस्थितिकी सामाजिक, सांस्कृतिक और भावात्मक विविधता की भूमि है। पर्यावरण से सम्बन्धित अनेकों प्रसंग तथा व्याख्याएँ हमारे वेदों, उपनिषदों तथा पुराणों में भरी पड़ी हैं। प्राचीन ऋषि मुनियों की संपूर्ण जीवनचर्या ही प्रकृति पर निर्भर थी। प्राचीनकाल में पर्यावरण में किसी भी प्रकार का प्रदूषण तथा असन्तुलन नहीं था, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति पर्यावरण तत्वों को देवता मानकर उनकी पूजा करता था। प्रकृति को हानि पहुँचाने को कौन कहे? प्रत्येक व्यक्ति के लिए तन-मन-धन से उसकी रक्षा करना नैतिक तथा धार्मिक कर्तव्य था।

वैदिक काल को अरण्य-संस्कृति का स्वर्णकाल कहा जाता था। फादर कामिल बुल्के ने अपने शोध-ग्रन्थ 'रामकथा उद्भव और विकास' में बाल्मीकि रामायण को पर्यावरण की महागाथा कहा है। यदि प्राचीन भारतीय परम्पराओं पर दृष्टिपात किया जाए तो यह स्पष्ट होता है कि यहाँ प्रकृति, मानव, वनस्पति तथा जीव-जन्तुओं में अगाध प्रेम था। प्राचीन काल में वनस्पतियों की अधिक महता के कारण उसे किसी भी प्रकार क्षति नही पहुँचायी जाती थी, जब कि आज हमने अपनी सुख सुविधाओं के लिए वनस्पतियों को भी नहीं छोड़ा है। हम अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए उन्हें विनष्ट करने में तनिक भी संकोच नही करते हैं, यही कारण है कि आज विश्व का वन प्रतिशत काफी घट गया है।

सन्दर्भ सूची-

1. पर्यावरण और अर्थशास्त्र-अरुण कुमार, पेज न. 40, रिगल पब्लिकेशन, 2009
2. अखण्ड ज्योति, जुलाई 2007, पृ.12
3. वैदिक साहित्य में पर्यावरण, लेख, पेज न. 43 पुस्तक- पर्यावरणीय अर्थशास्त्रः विविध आयाम रिगल पब्लिकेशन, 2009
4. पर्यावरणीय अर्थशास्त्रः विविध आयाम, पृ.-44, रिगल पब्लिकेशन, 2009
5. अथर्ववेद, 12,1, 1.1
6. ऋग्वेद, 10,137, 3-4
7. मनुस्मृति, 1/56
8. ऋग्वेद, 10/9/, 3-4
9. ब्रह्मपुराण
10. ऋग्वेद, 10/87/16-9
11. पर्यावरणीय अर्थशास्त्रः विविध आयाम, पृ.68 अरुण कुमार सिंह,
12. पर्यावरणीय अर्थशास्त्रः विविध आयाम, पृ.85 अरुण कुमार सिंह,

- अहिंसा एवं शांति विभाग
जैन विश्व भारती संस्थान,लाडनूं
ravindrachhapara@gmail.com
- आचार्य कालू कन्या महाविद्यालय
जैन विश्व भारती संस्थान, लाडनूं (राजस्थान)-341306